अनुबोधन, खण्ड 1, अंक 1, मार्च 2025, पृष्ठ 51–60
ISSN: 3049-4184 (प्रिन्ट) 3108-1185 (ऑनलाइन)
प्रकाशित: 31 मार्च 2025
जर्नल वेबसाइट: https://anubodhan.org

# अहिंसा की प्रासंगिकता : गाँधी के विशेष सन्दर्भ में

**मनीषा मिश्रा***

## सारांश

*अहिंसा की अवधारणा का वर्तमान महत्व एम० के० गाँधी जी की शिक्षाओं और आंदोलन के कारण मिलता है, जिन्हें भारत के राष्ट्रपिता के रुप में भी जाना जाता है। संकीर्ण अर्थ में गाँधी जी के अहिंसक आंदोलन को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक रणनीतिक युद्ध के रुप में देखा जा सकता है। हालाँकि, गाँधी जी की अहिंसा इससे भी कुछ अधिक है। गाँधी जी के लिए अहिंसा वह नैतिक सिद्धांत है जो मनुष्य के जीवन के सभी पहलुओं में मार्गदर्शन कर सकता है। राजनीतिक स्वतंत्रता अहिंसा के कई निहितार्थों में से केवल एक है। साथ ही यह भी देखा जा सकता है कि अहिंसा को कभी भी किसी गुप्त लक्ष्य तक पहुँचने का साधन मात्र नहीं माना जा सकता है। अहिंसा स्वयं में एक लक्ष्य है।*

**बीज शब्द:** *अहिंसा, गाँधी*

गाँधी जी के अनुसार अहिंसा एक शक्तिशाली हथियार है जिसका उपयोग अन्याय और उत्पीड़न के विरुद्ध लड़ने के लिए किया जा सकता है। गाँधी जी मानते थे कि अहिंसा ही एकमात्र तरीका है जिससे दुनिया में शांति और न्याय स्थापित किया जा सकता है।[1] गाँधी जी के अहिंसा के विचार ने दुनिया भर में लाखों लोगों को प्रभावित किया है। पहले अहिंसा का प्रयोग व्यक्तिगत साधना तथा राजनीति के लिए किया जाता था परंतु गाँधी जी ने ही सर्वप्रथम इसे समाज की जीवनविधि का अंग बना दिया। उन्होंने कहा था कि अहिंसा सभी धर्मों का आधार है। गाँधी जी के अनुसार अहिंसा केवल व्यक्तिगत सद्‌गुण नहीं है अपितु यह एक सामाजिक सद्‌गुण भी है। समाज का नियमन लोगों के आपसी व्यवहार में अहिंसा के प्रकट होने से होता है।[2]

सत्य के साक्षात्कार की एकमात्र विधि अहिंसा है। 'अहिंसा' पद 'अ' पूर्वक होने के कारण निषेधात्मक प्रतीत होता है, किन्तु तत्वतः यह भावात्मक पद है। हिंसा वह क्रिया है जिसमें मन, वाणी अथवा कर्म के द्वारा किसी को कष्ट पहुँचाया जाता है, अथवा उसके अधिकार का हनन किया जाता है।

*शोध छात्रा, दर्शनशास्त्र विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

इससे यह स्पष्ट होता है कि हिंसा स्वयं निषेधात्मक है। मानसिक, वाचिक अथवा कार्मिक हिंसा किसी न किसी रूप में अधिकार का निषेध अवश्य करती है। इस निषेधमूलक हिंसा का निषेध करने वाला अहिंसा पद 'द्विधा निषेध' से भावात्मक बन जाता है। अहिंसा के भी तीन प्रकार होते है– मन, वाणी एवं कर्म से किसी को कष्ट न देना या किसी के अधिकार का हनन न करना अहिंसा है।[3] अहिंसा का महत्व इसी से सिद्ध हो जाता है कि भारतीय दर्शनों में इसे प्रत्येक सम्प्रदाय किसी न किसी रूप में मानता है। जैन और बौद्ध दर्शन तो अहिंसा को अत्यधिक मूल्यवान मानते हैं। गाँधी दर्शन में अहिंसा केन्द्रीय सिद्धान्त है क्योंकि इस दार्शनिक प्रणाली का कोई बिन्दु ऐसा नहीं है, जो अहिंसा से असंम्बद्ध हो।

अहिंसा मन, वाणी और कर्म से सम्बद्ध होने के कारण त्रिविध है। इसकी अभिव्यक्ति के भी अनेक रूप हैं। जब कोई कायर व्यक्ति किसी हिंसात्मक अन्याय का विरोध नहीं करता, तो वह अहिंसा जैसा प्रतीत होता है। कायरता में कर्म की हिंसा तो नहीं होती, किन्तु मानसिक हिंसा विद्यमान होती है। कायर व्यक्ति अपने विपक्षी का बुरा चाहता और सोचता है इसलिए इसे अहिंसा नहीं माना जा सकता। कायरता अव्यक्त हिंसा है। गाँधी–दर्शन में कायरता की निन्दा की गयी है और इसे निकृष्ट अहिंसा माना गया है।[4]

अहिंसा की अभिव्यक्ति का दूसरा रूप 'प्रतिहिंसा' है। किसी अन्यायपूर्ण हिंसा का विरोध हिंसा के द्वारा करना प्रतिहिंसा कहलाता है। प्रतिहिंसा कायरता की तुलना में उत्कृष्ट है। इस अवस्था में हिंसा का प्रत्युत्तर देते हुए व्यक्ति केवल कर्म में हिंसा करता है, किन्तु मन एवं वाणी से वह हिंसक नहीं होता। प्रतिहिंसा सम्प्रत्यय हिंसा के विरूद्ध हिंसा है और निषेध का निषेध होने के कारण यह भावात्मक है। जब कोई सैनिक सीमा पर विपक्षी के गोलीबारी का जवाब गोली से देता है तो वह हिंसा नहीं करता, अपितु हिंसा को रोकने का प्रयास करता है। इसलिए उसका यह कार्य अहिंसा कहा जाएगा। वास्तव में यह 'स्वधर्म' का पालन कर रहा है, इसलिए उसका आचरण उचित है। गीता में अर्जुन को युद्ध करने का उपदेश दिया गया है किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि गीता हिंसा की शिक्षा देती है। सत्य यह है कि गीता 'स्वधर्म' पालन की शिक्षा देती है और इसके लिए अनिवार्य होने पर युद्ध भी उचित

है। इस प्रकार स्थापित होता है कि कायरता से श्रेष्ठ होते हुए भी इसे पूर्ण अहिंसा नहीं कहा जा सकता।

अहिंसा की अभिव्यक्ति का तीसरा रूप वह है जिसमें इसका पालन इसलिए किया जाता है क्योंकि अहिंसा सर्वोत्तम विधि है। इसे हम नियम के रूप में अहिंसा कह सकते हैं। नियम के रूप में अहिंसा पूर्वोक्त दोनों रूपो से उत्कृष्टतर है क्योंकि इसमें व्यक्ति मन, वाणी एवं कर्म तीनों प्रकार से अहिंसक होता है। किन्तु इस अवस्था को भी पूर्ण अहिंसा नहीं कहा जा सकता। वास्तव में इस अवस्था में विद्यमान अहिंसक अहिंसा का पालन इसलिए करता है क्योंकि अहिंसा सर्वोत्तम विधि है किन्तु ज्यों ही इससे श्रेष्ठ कोई विधि उसे मिल जाएगी वह अहिंसा का त्याग कर सकता है। जिस प्रकार यह कहा गया है कि ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है किन्तु जो इस नीति का पालन करता है उसे ईमानदार नहीं कहा जा सकता। आशय स्पष्ट है कि नीति के रूप में अहिंसा का पालन करने वाला व्यक्ति पूर्ण अहिंसक नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसने अहिंसा को नीति के रूप में स्वीकार किया है। यह स्वीकृति बुद्धि, मन, वाणी एवं कर्म की स्वीकृति है फिर भी इसे सर्वात्मना स्वीकृति नहीं माना जा सकता।

अहिंसा की पूर्णता तभी संभव है जब एकात्मबोध संभव हो जाय अर्थात् जिस व्यक्ति को यह अनुभव हो जाता है कि एक ही विराट् तत्व सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है वही पूर्ण अहिंसक हो सकता है। ऐसा व्यक्ति किसी के प्रति द्वेषपूर्ण व्यवहार नहीं कर सकता क्योंकि ऐसा करने पर वह स्वयं अपने से विद्वेष करने लगेगा। यह अवस्था आत्मज्ञान की अवस्था है, जिसमें हिंसा करना असंभव हो जाता है। जिस अवस्था के विषय में तुलसी ने लिखा है 'निज प्रभुमय देखहिं जगत केहिं सन करहिं विरोध' जो व्यक्ति स्वयं को अथवा ईश्वर को जगत में व्याप्त देख रहा हो, वह विरोध किससे करेगा? गाँधी दर्शन में सच्चे अहिंसक की भी यही स्थिति है। मनुस्मृति में इसी अवस्था का वर्णन इस प्रकार मिलता है– सर्वभूतेषु आत्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। सम्पश्यन्नात्मयाजीवै स्वाराज्यमधिगच्छति।। अर्थात् सभी प्राणियों में स्वयं को तथा सभी प्राणियों को स्वयं में देखने वाला आत्मबलिदानी स्वाराज्य को प्राप्त करता है। स्वाराज्य मोक्ष का वाचक शब्द है। यह आदर्श आत्मपूर्णता

के समतुल्य है। गाँधी दर्शन में पूर्ण अहिंसक का आदर्श जीवनमुक्त के आदर्श के समान है।

रूसो की तरह गाँधी जी भी सोचते थे कि सैन्य कला का विकास और सैनिकों द्वारा सैन्य स्वतंत्रता का प्रदर्शन प्रगति का नहीं बल्कि पतन का प्रतीक है। शस्त्रीकरण और तैयारी का पथ भय, विश्वास और संदेह के व्यापक प्रसार का अप्रत्यक्ष प्रमाण है। इसलिए गाँधी जी युद्ध के विकल्प के रुप में अहिंसा का प्रचार करने की स्वतंत्रता चाहते थे। वह युद्ध को बुराई मानते थे और रक्षात्मक युद्ध या न्यायपूर्ण युद्ध की दलील को भी स्वीकार नहीं करते थे। उन्होंने प्रत्याशित युद्ध की धारणा को भी अस्वीकार किया। उनका मानना था कि हमेशा कोई न कोई पक्ष होता है जो युद्ध शुरु करने का दोषी होता है। यह कहना सही और पर्याप्त नहीं है कि युद्ध शैतान या बेकाबू ताकतो का तंत्र है। लियो टॉलस्टॉय ने ईसाई धर्म और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए हथियारों की आवश्यकता को स्वीकार करने के बीच के विरोधाभास को भी पहचाना था। गाँधी जी ने शांति की पूर्णता पर विचार किया था और यहाँ तक कि सार्वभौमिक निरस्त्रीकरण की कल्पना भी की थी। उनकी अहिंसा सार्वभौमिक भाईचारे को एक अंतिम दृष्टि प्रदान करती है और उन्हें आशा थी कि विश्व राजनीति में सशस्त्र संघर्षों के स्थान पर परामर्श और मध्यस्थता का सहारा बढ़ेगा।

हालाँकि गाँधी जी के अनुसार अहिंसा के दृष्टिकोण से सभी युद्ध अन्यायपूर्ण हैं फिर भी स्वतंत्रता के बाद की आकाँक्षा आक्रामक और रक्षक के बीच अंतर करेगी और उत्तरार्द्ध को सभी नैतिक समर्थन प्रदान करेगी।

कभी–कभी गाँधी जी की अहिंसा और युद्ध के कुछ रुपों में उनकी भागीदारी के बीच विरोधाभास महसूस किया गया है। बोआर युद्ध के समय 1899 में उन्होंने एक स्वयंसेवी एम्बुलेंस कोर की स्थापना की।[5] 1906 में उन्होंने जुलु विद्रोह के समय बीस भारतीओं की एक स्ट्रेचर उठाने वाली पार्टी बनायी। 1914 में उन्होंने लंदन में एक स्वंयसेवी एम्बुलेंस कोर की स्थापना की जिसमें मुख्य रुप से लंदन में रहने वाले भारतीय छात्र शामिल थे।[6] 1918 में ब्रिटिश पक्ष की ओर से युद्ध के लिए भारतीय सैनिकों की आवश्यकता के लिए कठोरतम गतिविधि करके उन्होंनें स्वयं को लगभग मार ही डाला था जबकि तिलक कुछ शर्तों के पूरा होने पर ही भर्ती के माध्यम मित्र राष्ट्रों की

मदद करना चाहते थे। बल्कि गाँधी जी बिना शर्त सैन्य समर्थन के पक्ष में थे। इस तरह यह पूछा जाता है कि यदि गाँधी जी पूर्ण अंहिसा के समर्थक थे तो उन्होंने युद्ध में किसी भी तरह से भाग क्यों लिया। जब वह 1918 में भर्ती में मदद कर रहे थे, तो क्या वह जर्मन सैनिकों की हत्या की योजना बनाने में सहायता नहीं कर रहे थे? लेकिन गाँधी जी ने यह कहकर पर अपने फैसले का बचाव किया था कि जब तक वह ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन है संकट के समय में उनकी मदद करना उनका कर्तव्य था। वे अपनी आत्मकथा में कहते हैं, "जब दो राष्ट्र लड़ रहे हों तो अहिंसा के समर्थक का कर्तव्य युद्ध का समर्थन करना है। वह जो उस कर्तव्य के बराबर नहीं है, जिसके पास युद्ध का विरोध करने की कोई शक्ति नहीं है, वह जो युद्ध का विरोध करने के लिए योग्य नहीं हैं, युद्ध में भाग ले सकता है।"[7] मुझे आशा थी कि मैं ब्रिटिश साम्राज्य के माध्यम से अपनी और अपने लोगों की स्थिति में सुधार करुँगा। जब मैं अपने अध्ययन काल के दौरान इग्लैंड में था तो ब्रिटिश बेड़े की सुरक्षा का आनंद ले रहा था और उसकी सशस्त्र शक्ति का आश्रय भी ले रहा था तब मैं सीधे तौर पर उसकी संभावित हिंसा में भाग ले रहा था। इसलिए अगर मैं साम्राज्य के साथ अपना संबंध सही रखने की इच्छा रखता हूँ तो मेरे सामने तीन विकल्प हैं– मैं युद्ध के लिए प्रतिरोध की घोषणा कर सकता हूँ और सत्याग्रह के कानून के अनुसार साम्राज्य का तक तक बहिष्कार करुँ जब तक कि वे अपनी सैन्य पुलिस को नहीं हटाते या मैं उसके ऐसे कानूनों की सविनय अवज्ञा द्वारा कारावास की माँग कर सकता था जो अवज्ञा के योग्य थे, या मैं ब्रिटिश साम्राज्य के पक्ष में युद्ध में भाग ले सकता था जिससे युद्ध की हिंसा का विरोध करने की क्षमता और योग्यता प्राप्त कर सकूँ। मुझमें इस क्षमता और योग्यता की कमी थी इसलिए मैनें सोचा कि युद्ध में भाग लेने के अलावा मेरे पास कोई विकल्प नहीं है।

"मैं अहिंसा की दृष्टिकोण से लड़ाकों और गैर–लड़ाकों के बीच कोई अंतर नहीं करता। वह जो डकैतों के गिरोह की स्वेच्छा से सेवा करता है, उनके वाहक के रुप में काम करता है, या जब वे घायल हो जाते हैं तो उनकी नर्स के रुप में देखभाल करता है, वह डकैती का उतना ही दोषी है जितना कि स्वयं डकैत। उसी तरह जो लोग युद्ध में घायलों की देखभाल करने तक ही सीमित रहते हैं, उन्हें युद्ध के दोष से मुक्त नहीं किया जा

सकता है।"[8] लेकिन यहाँ पर भी बताना जरुरी है कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान उन्होंने 1918 वाली स्थिति अपनाने से मना कर दिया था।

1927 में जब उनकी आत्मकथा प्रकाशित हुई तब गाँधी जी 58 वर्ष के थे। अभी भी उन्हें कई अहिंसक संघर्ष लड़ने बाकी थे जैसे– हिंदू–मुस्लिम एकता, जाति आधारित अस्पृश्यता का उन्मूलन, घर में बने स्वदेशी कपड़ों की वकालत और सबसे बढ़कर ब्रिटिश शासन से भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करना। उनकी आत्मकथा उन मूल मान्यताओं को आकार देने में जिन पर बाद में उनकी राजनीतिक कार्यवाही का अहिंसक साधन, सत्याग्रह या सत्य बल स्थापित किया गया था, को अंतर्दृष्टि प्रदान करती है।

अहिंसा की अपनी अवधारणा पर गाँधी जी लिखते हैं– "अहिंसा व्यापक सिद्धांत है।" हम हिंसा के ध्वजवाहक में फँसे नैतिक लोगों की मदद कर रहे हैं। यह कहावत कि जान पर जान रहती है, इसका गूढ़ अर्थ है। मनुष्य एक पल के लिए भी सचेतन या अचेतन रुप से बाह्य हिंसा किये बिना नहीं रह सकता। उसके रहने–खाने–पीने और घूमने–फिरने में कुछ न कुछ हिंसा अवश्य शामिल रहती है अर्थात् जीवन का विनाश तो होता ही है। इसलिए अहिंसा का समर्थक अपने विश्वास के प्रति सच्चा रहता है यदि उसके सभी कार्यों का स्रोत करुणा है। यदि वह अपनी क्षमता के अनुसार सभी छोटे प्राणी के विनाश को रोकता है या उसे बचाने की कोशिश करता है तो इसप्रकार वह तेजी से हिंसा के दुष्चक्र से मुक्त होने लगता है।[9] ऐसे व्यक्ति में लगातार आत्म–संयम और दूसरे के प्रति प्रेम विकसित होता रहेगा।

गाँधी जी का अहिंसा का विचार पूरी तरह अहिंसा की वैदिक अवधारणा पर आधारित नहीं है। उन्होंने अहिंसा के प्रयोग में सभी अपवादों को नकार दिया। उन्होंने अपनी अहिंसा को तपस्वी स्रोतों से प्राप्त किया और यह तपस्वी (श्रमिक) अवधारणा थी जिसे पहली बार राजनीति और अर्थशास्त्र में लागू किया। गाँधी जी ने महसूस किया कि राजनीतिक अहिंसा, जिसे उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में प्रस्तावित किया था और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के समक्ष भी प्रस्तुत किया था, दोनों ही दृष्टातों में वांछनीय थी। पहले दृष्टांत में यह अधिक सफल थी क्योंकि एक सघन क्षेत्र में प्रतिरोध छोटा था और इसलिए इसे आसानी से नियंत्रित किया जा सकता था। हालाँकि बाद के दृष्टांत में, एक विशाल देश में अनगिनत लोग थे और परिणामस्वरुप नियंत्रण

और शिक्षा हासिल करना मुश्किल था फिर भी परिणाम आश्चर्यजनक थे, हालाँकि आदर्श से बहुत दूर थे। "अहिंसा का अभ्यास उस आदर्श को पूरा कर सकता है जो परिपूर्ण है। हालाँकि अहिंसा का अभ्यास करने की अक्षमता को कदम पर कदम दूर किया जा सकता है। व्यवहार में आदर्श तक कभी नहीं पहुँचा जा सकता है, क्योंकि लक्ष्य भी हमारे लिए कभी–कभी पीछे छूट सकता है। जीत पूर्ण प्रयास में निहित है।"[10] शांति सामाजिक और आर्थिक अहिंसा के अनुप्रयोग का एक परिणाम है, जब वे पर्याप्त रुप से साकार हो जाते हैं। मानव जाति केवल अहिंसा के माध्यम से सैन्य हिंसा से बच सकती है।

उल्लेखनीय है कि विश्व के सभी प्रमुख धर्मों में 'शान्ति', प्रेम, क्षमा और करुणा या महाकरुणा पर बल दिया जाता है। शान्ति और अहिंसा के दर्शन का प्रतिपादन बौद्ध, जैने एवं वेदान्त की धार्मिक एवं दार्शनिक परम्परा में भी हुआ है। ईसामसीह ने 'पड़ोसी से अपने जैसी ही प्रेम करो' पर बल दिया। यही मानव धर्म और शान्ति का मार्ग है। इसी प्रकार इस्लाम भी शान्ति और अध्यात्म का सन्देश देता है, भले ही उसके कुछ अनुयायियों का आचार–विचार इसके विपरीत हो। हिंसा, घृणा, शत्रुभाव, क्रोध, प्रलोभन और मोहजनित आसक्ति सामाजिक अशान्ति और तनाव के प्रमुख कारक हैं। महाभारतकार ने सभी प्रकार की हिंसा के परित्याग पर बल दिया है। इसीलिए कहा गया है– अहिंसा परमो धर्मः। भारतीय परम्परा में धर्म की अवधारणा एक सीमा तक प्लेटो की 'न्याय दृष्टि' के समान है क्योंकि धर्म और न्याय सामाजिक शान्ति, सामज्जस्य एवं समरसता के मूल आधार हैं। बौद्ध दर्शन में मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा को शान्ति के लिए आवश्यक माना गया है। सुखी लोगों के प्रति मैत्रीभाव, दुखी प्राणियों के प्रति करुणा का भाव, सत् कर्मों अथवा पुण्यात्मा के प्रति मुदिता या आनन्द का भाव एवं पाप कर्मों के प्रति उपेक्षाभाव अनिवार्य है। ये आत्म–शुद्धि एवं मन की शान्ति के लिए आवश्यक हैं। वस्तुतः करुणा, अहिंसा की तार्किक प्रागपेक्षा है। इसी क्रम में करुणा और अहिंसा को शान्ति की प्रागपेक्षा और आधारशिला कहा जा सकता है।

महात्मा गाँधी के द्वारा जिस अहिंसा और विश्वशान्ति की परिकल्पना की गयी है, वह बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, ईसामसीह और पैगम्बर हजरत

मोहम्मद के द्वारा अपनायी गयी शान्ति से भिन्न है। गाँधीजी अहिंसा जनित वैश्विक शान्ति को केवल धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं करते हैं, बल्कि उन्होंने इसका प्रयोग सामाजिक राजनीतिक एवं आर्थिक अर्थात् लौकिक जीवन के सभी क्षेत्रों में किया है। उन्होंने अहिंसा को समस्त नैतिक एवं अध्यात्मिक मूल्यों का आधार माना है। जैनियों के पञ्ज महाव्रतों और योग–दर्शन में 'यम' के अन्तर्गत अहिंसा को एक व्रत या अंग माना गया है। इसके विपरीत गाँधी–दर्शन में अहिंसा केवल एक व्रत अथवा मूल्य नहीं है, बल्कि समस्त मूल्यों का आधार और मूल्यांकन का मानदण्ड है। सुशासन और विश्वशान्ति के लिए करुणा, प्रेम, आत्म–संयम एवं अहिंसा को अनिवार्य माना गया है। अहिंसा शान्ति का सार तत्व है। अन्य मूल्य और सद्गुण इसलिए मूल्यवान हैं, क्योंकि उन्हें अहिंसा से निगमित किया जा सकता है।[11]

गाँधीवाद के अन्तर्गत शान्ति और अहिंसा के लिए निम्नलिखित विशेषताएं महत्वपूर्ण हैं :

(1) पूर्ण आत्म–शुद्धि के द्वारा मन के विकारों पर नियन्त्रण। इसके लिए आत्म–संयम एवं अनासक्ति आवश्यक है। आत्म–संयम का बार–बार अभ्यास और भोगों के साथ–साथ भोगेच्छा का त्याग आवश्यक है।

(2) किसी भी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट न देना, अर्थात् अन्य को शारीरिक, मानसिक या मनोवैज्ञानिक, आर्थिक आदि किसी भी प्रकार से (मानसा, वाचा और कर्मणा कष्ट या दण्ड न देना।

(3) प्रत्येक प्रकार की हिंसा का परित्याग करना क्योंकि प्रत्येक हिंसात्मक आचरण आत्म–नियंत्रण के अभाव के कारण होता है। इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक प्रकार की हिंसा आत्म–संयम के नष्ट होने पर ही होती है।

(4) जय और पराजय, लाभ और हानि एवं सिद्धि तथा असिद्धि के प्रति समदृष्टि या तटस्थ दृष्टिकोण रखना आवश्यक है क्योंकि अहिंसा के पुजारी के लिए जय और पराजय को कोई महत्व नहीं होता है।

(5) अहिंसा सामाजिक शान्ति, सौहार्द और सुव्यवस्था को सुनिश्चित करती है, जो आत्म सम्मान (मानवाधिकार) समता और प्रसन्नता के मुख्य घटक हैं। इस प्रकार अहिंसा अनासक्तियोग है।

वस्तुतः गाँधीजी का विश्वास था कि अहिंसा ही शान्ति और विश्व की एकता को निर्धारित और सुदृढ़ करने वाली महान शक्ति है जो शान्ति–पथ पर चलने के लिए विवश कर देती है। इससे स्पष्ट है कि वैश्विक शान्ति की आधार–शिला अहिंसा का दर्शन है। किन्तु यह तब तक प्रभावी नहीं हो सकता है जबतक कि मानव के स्वभाव और दृष्टिकोण में वास्तविक बदलाव न हो।[12]

वस्तुतः शान्ति और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अहिंसा के सिद्धानत का प्रयोग राजनीति के क्षेत्र में करना लोकनीति की दिशा में एक आमूल परिवर्तन है। इसके अन्तर्गत लोगों के हृदय, मानसिकता और दृष्टिकोण को परिवर्तित करने पर बल दिया गया है। घृणा के स्थान पर प्रेम, क्रूरता के स्थान पर करूणा, हिंसा के स्थान पर अहिंसा, प्रतियोगी के स्थान पर सहयोगी भाव को अपनाकर वैश्विक समाज को 'बाजार' के स्थान पर परिवार के रूप में रूपान्तरित किया जा सकता है। इससे विश्व–शान्ति और वैश्वीकरण का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। विश्व के वैज्ञानिकों ओर विचारकों को यह अवश्य महसूस करना होगा कि मानव–जीवन की सम्पूर्णता अथवा समग्रता केवल तर्कबुद्धि, इन्द्रियानुभव विज्ञान और तकनीक तक ही सीमित नहीं है। मनुष्य शरीर, मन और बुद्धि के साथ–साथ हृदय और आत्मा का संश्लिष्ट और समन्वित रूप है। इस प्रकार शान्ति एवं अहिंसा का दर्शन मानव जीवन को शरीर, मन एवं मस्तिष्क के साथ हृदय एवं आत्मा को संयुक्त मिश्रण के रूप में स्वीकार करता है। ये संश्लिष्ट रूप में हमारी चेतना अथवा आत्म–चेतना के अभिन्न अंग हैं। यह भारतीय मनीषियों की विश्व के लिए एक महान देन है जिसका प्रतिनिधित्व बीसवीं शताब्दी में गाँधी जी ने किया। भारत ने पूरे विश्व को शान्ति का यह सन्देश दिया है। अतः शान्ति और अहिंसा वैश्वीकरण और वैश्विक समाज के अस्तित्व की तार्किक प्रागपेक्षा है एवं इसी को अपनाने से वर्तमान युग में राष्ट्रों के बीच बढ़ रहे तनावों एवं सशस्त्र हिंसा को समाप्त किया जा सकता है। गाँधी जी ने युद्ध के पक्ष में रहकर तथा विपक्ष में रहकर अन्ततः अहिंसा के मार्ग पर बल दिया है। उनके विचारों को विश्व को अपनाने की अत्यंत आवश्यकता है जिससे भविष्य में तृतीय विश्वयुद्ध से बचा जा सके।

## सन्दर्भः


1- Sharma, Manish, "Non-violence in The 21st Century : Application and Efficacy", Deep & Deep Publications Pvt- Ltd., New Delhi, 2006, P-37.

2- Gandhi, M.K, "My Experiment with Truth", Trans- By Mahadev Desai, Navajivan Publishing House, Ahmadabad, 1927, P-51.

3. गांधी. एम. के., "अनासक्ति योग" (हिंदी), सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस, 2002, नई दिल्ली, पृ०–70 ।

4. गाँधी. एम.के., "सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा", (अनुवादक–काशिनाथ द्विवेदी), नवजीवन ट्रस्ट, 2020, पृ०–250 ।

5. वही, पृ० –215 ।

6. वही, पृ० –314 ।

7. वही, पृ० –351 ।

8. वही, पृ० –354 ।

9- Bhaneja, Balwant, "Understanding Gandhi's Ahimsa (Non-Violence)", Reflection on an Autobiography : The Story of My Experiment of Truth, Book Review, Articles, 2006, ISSN-1886-5860.

10- Tahtinan, Unto, Ahimsa, "Non-Violence in Indian Tradition", Rider and Company, London, 1976, P-122.

11- Pandey, Sanganlal, "Whither Indian Philosophy", Darshana Peeth, Allahabad, P.P. 452-454.

12. मिश्रा, आर.पी. (संपादक), "अनासक्ति दर्शन", भाग–5 अंक1, जनवरी–जून (2009), पृ० –51–52 ।


Copyright © 2025 Siri Research Foundation. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution License (CC BY-NC-ND 4.0).